



प्रकाशनार्थ अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

द्वितीय अपील क्रमांक 236/2004

1. लखन लाल, आयु लगभग 40 वर्ष, पिता स्व. बरतिया साहू,
2. हुलासम साहू, आयु लगभग 35 वर्ष, पिता स्व. बरतिया साहू,
दोनों निवासी – खंडसरा, तहसील एवं जिला-कवर्धा, वर्तमान पता-कबीरधाम (छत्तीसगढ़)
3. कमला बाई, आयु लगभग 45 वर्ष, पिता स्व. शिवचरण, निवासी ग्राम- डौकाबांधा, तहसील एवं
जिला-कवर्धा, वर्तमान पता-कबीरधाम (छत्तीसगढ़)

--- अपीलार्थीगण/वादीगण

विरुद्ध

1. आशाराम, आयु लगभग 45 वर्ष, पिता स्व. हरि महारा, कास्तकर, निवासी- खंडसरा, थाना-बोडला,
तहसील-कवर्धा, जिला-कबीरधाम
2. छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा-कलेक्टर कबीरधाम (छ.ग.)

--- उत्तरवादीगण/प्रतिवादीगण

अपीलार्थीगण/वादीगण की ओर से	:	श्री बी.पी.गुप्ता, अधिवक्ता
उत्तरवादी क्रमांक 1/प्रतिवादी की ओर से	:	डॉ.शिव कुमार श्रीवास्तव, अधिवक्ता
उत्तरवादी क्रमांक 2 की ओर से	:	श्री आकाश पाण्डेय, पैनल अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय के. अग्रवाल

बोर्ड पर निर्णय

06/08/2019

वादी के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत इस द्वितीय अपील में अन्तर्वलित, विनिर्मित व विनिश्चय किए जाने हेतु विधि का सारवान प्रश्न निम्नानुसार है:-

“1. क्या बिना किसी प्रति अपील या प्रति आपत्ति के, विचारण न्यायालय के उस निष्कर्ष को चुनौती देते हुए कि कोई दस्तावेज विक्रय विलेख है, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा बंधक विलेख के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है?



2. क्या इस आधार पर कि कब्जे से अनुतोष के लिए संशोधन आवेदन अपीलीय स्तर पर प्रस्तुत किया गया है, इसे खारिज किया जा सकता है? "

(सुविधा हेतु, पक्षकारों को विचारण न्यायालय के समक्ष वाद में दर्शित उनकी प्रास्थिति व श्रेणी के अनुसार संदर्भित किया जाएगा)

2. वादी ने स्वत्व की घोषणा और प्रतिवादी क्रमांक 1 को उसके शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा हेतु वाद प्रस्तुत किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी व्यक्त किया गया कि उसने दिनांक 28.11.67 को पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा वाद भूमि क्रय की है और वह वाद भूमि का स्वत्व और कब्जा धारक है।

3. प्रतिवादी क्रमांक 1 ने अपना लिखित कथन प्रस्तुत किया और अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए वादपत्र में किए गए कथनों से इनकार किया कि विक्रय विलेख वास्तविक विक्रय नहीं है, बल्कि यह एक बंधक विलेख है और साथ ही प्रतिकूल कब्जे की अभिवचन भी प्रस्तुत की।

4. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों की विवेचना करने के उपरान्त, दिनांक 22.3.96 के अपने निर्णय एवं डिक्री द्वारा अभिनिर्धारित किया कि वादी दिनांक 28.11.67 के विक्रय विलेख के आधार पर वाद भूमि का स्वत्व धारक है और चूंकि वह वाद भूमि पर कब्जा नहीं रखता है, इसलिए वह स्थायी निषेधाज्ञा हेतु डिक्री का हकदार नहीं है, विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध वादी ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील की, जिसमें उसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के अधीन कब्जे से अनुतोष की मांग करते हुए एक आवेदन भी प्रस्तुत किया क्योंकि विचारण न्यायालय ने वाद खारिज करते हुए पाया था कि वादी वाद भूमि पर कब्जा नहीं रखता है। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह कहते हुए अपील को खारिज कर दिया कि दिनांक 28.11.67 का विक्रय विलेख एकमुश्त विक्रय नहीं है और यह एक बंधक विलेख है और संशोधन हेतु आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि इसे विलंबित चरण में प्रस्तुत किया गया है। उक्त निर्णय एवं डिक्री को प्रश्नगत करते हुए, वादी के विधिक प्रतिनिधियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन यह द्वितीय अपील प्रस्तुत की है, जिसमें विधि के सारवान प्रश्न तैयार किए गए हैं और इस निर्णय के प्रारंभिक पैरा में दर्शाए गए हैं।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.पी. गुप्ता ने तर्क किया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विक्रय विलेख को बंधक विलेख मानना पूर्णतः अनुचित है, क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा विक्रय



विलेख को पूर्ण विक्रय मानने के निर्णय को चुनौती नहीं दी गई है, क्योंकि प्रतिवादी द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष वादी को वाद भूमि का स्वत्व-धारक घोषित करने वाले डिक्री के उस भाग को प्रश्नगत करते हुए कोई प्रति अपील या प्रति आपत्ति प्रस्तुत नहीं की गई थी। उन्होंने आगे तर्क किया कि अपीलीय स्तर पर संशोधन हमेशा स्वीकार्य है और इसे रुखमाबाई विरुद्ध लाला लक्ष्मीनारायण व अन्य¹ के प्रकरण में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित विधि के दृष्टिगत प्रदान किया जाना चाहिए था, इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय एवं डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है।

6. दूसरी ओर, उत्तरवादी क्रमांक 1/प्रतिवादी क्रमांक 1 के विद्वान अधिवक्ता डॉ. शिव कुमार श्रीवास्तव, आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री का समर्थन करते हुए तर्क करते हैं कि वादी को पूर्णतः ज्ञात था कि वह वाद भूमि पर कब्जा नहीं कर रहा है, फिर भी उसने कब्जे से अनुतोष का दावा नहीं किया और इसलिए, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा आवेदन को यह कहते हुए खारिज करना उचित है कि यह विलम्बित आवेदन है। उन्होंने आगे तर्क किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 33 के दृष्टिगत, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विक्रय विलेख को बंधक विलेख माना है, यद्यपि, प्रतिवादी क्र. 1 ने कोई प्रति-अपील या प्रति-आपत्ति नहीं की, ऐसे में, प्रथम अपीलीय न्यायालय का आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री यथावत रखे जाने योग्य है।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना है, उनके द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का भी अत्यंत सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है।

8. निस्संदेह और निर्विवाद रूप से, वादी द्वारा प्रस्तुत वाद में विचारण न्यायालय ने विवाद्यक क्रमांक 1 और 4 का उत्तर देते हुए स्पष्ट रूप से निष्कर्ष दर्ज किया है कि प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित दिनांक 28.11.67 का विक्रय विलेख एक पूर्ण विक्रय है और यह बंधक विलेख नहीं है और इस प्रकार, वादी वाद की भूमि का स्वत्व धारक है, परंतु यह मानते हुए मुकदमा खारिज कर दिया कि वादी के पास वाद भूमि का कब्जा नहीं है और कब्जे से अनुतोष का दावा नहीं किया गया है, जिसके विरुद्ध वादी ने प्रथम अपील की और कब्जा पाने के लिए कब्जे से अनुतोष की मांग करते हुए वादपत्र में संशोधन करने की स्वीकृति भी मांगी। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने सबसे पहले वादपत्र में कब्जे से अनुतोष की स्वीकृति मांगने वाले संशोधन के आवेदन को खारिज कर दिया और इसे विलम्बित आवेदन माना और उसके बाद विवाद्यक क्रमांक 1 और 4 पर निष्कर्ष को उलट दिया और अभिनिर्धारित किया कि विक्रय विलेख एक पूर्ण विक्रय नहीं है, परंतु उक्त लेनदेन बंधक का प्रतीत होता है। तथ्य यह है कि विवाद्यक क्रमांक 1 और 4 के संबंध में यह निष्कर्ष कि वादी दिनांक 28.11.67 के विक्रय विलेख के

1 AIR 1960 SC 335



आधार पर वाद भूमि का स्वत्व धारक है, तथा यह विक्रय एक पूर्ण विक्रय है और यह बंधक विलेख नहीं है, अंतिम हो गया है क्योंकि वादी द्वारा प्रस्तुत अपील में प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा कोई प्रति-अपील या प्रति-आपत्ति नहीं की गई थी।

9. अवधारणीय प्रश्न यह है कि क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विवाद्यक क्रमांक 1 और 4, 5 पर पारित निर्णय में हस्तक्षेप करना न्यायोचित है, जो पूर्व ही वादी के पक्ष में और प्रतिवादी क्रमांक 1 के विरुद्ध पारित किया जा चुका है?

10. प्रतिवादी क्रमांक 1 के विद्वान अधिवक्ता डॉ. शिव कुमार श्रीवास्तव ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 33 को लागू किया है, जिसमें निम्नानुसार उल्लेखित है:-

“33. **अपील न्यायालय की शक्ति**-अपील न्यायालय की यह शक्ति होगी कि वह कोई ऐसी डिक्री पारित करे या कोई ऐसा आदेश करे जो पारित की जानी कि थी या जो किया जाना चाहिए था, और ऐसा या अतिरिक्त या अन्य डिक्री या आदेश पारित करे, जो प्रकरण में अपेक्षित हो, और उस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा इस बात के होते हुए भी किया जा सकेगा कि अपील डिक्री के केवल भाग के बारे में है और यह शक्ति सभी प्रत्यर्थियों या पक्षकारों या उनमें से किसी के भी पक्ष में प्रयोग की जा सकेगी, यद्यपि ऐसे प्रत्यर्थियों या पक्षकारों ने कोई भी अपील या आक्षेप फाइल न किया हो और जहां प्रतीपवादों में डिक्रियां हुई हों या जहां एक वाद में दो या अधिक डिक्रियां पारित की गई हों वहां यह शक्ति सभी डिक्रियों या उनमें से किसी के बारे में प्रयोग की जा सकेगी, यद्यपि ऐसी डिक्रियों के विरुद्ध अपील फाइल न की गई हो :

परन्तु अपील न्यायालय धारा 35 क के अधीन कोई भी आदेश किसी ऐसे आक्षेप के अनुसरण में नहीं करेगा जिस पर उस न्यायालय ने जिसकी डिक्री की अपील की गई है, ऐसा आदेश नहीं किया है या ऐसा आदेश करने से इन्कार किया है।

11. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 41 नियम 33 अपीलीय न्यायालय को कोई भी डिक्री या आदेश पारित करने में सक्षम बनाता है। सामान्यतः, अपीलीय न्यायालय को किसी ऐसे पक्षकार के पक्ष में डिक्री/आदेश में परिवर्तन या उलटफेर नहीं करना चाहिए जिसने कोई अपील नहीं की है और यह नियम सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 33 के बावजूद भी लागू होता है। यद्यपि, अपवादात्मक प्रकरणों में, यह नियम अपीलीय न्यायालय को ऐसी डिक्री या आदेश पारित करने में सक्षम बनाता है जो पारित की जानी चाहिए थी, भले ही ऐसी डिक्री उन पक्षकारों के पक्ष में हो जिन्होंने कोई अपील प्रस्तुत



नहीं की है। यद्यपि यह शक्ति विवेकाधीन है, परंतु केवल इस आधार पर इसका प्रयोग करने से इनकार नहीं किया जाना चाहिए कि पक्षकार ने कोई अपील नहीं की है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 33 के प्रावधानों का उदारतापूर्वक प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि केवल अपवादात्मक प्रकरणों में ही इसका उपयोग किया जाना चाहिए। जहां न्याय के प्रयोजन ऐसा मांगते हैं, वहां न्यायालय को कोई भी डिक्री या आदेश पारित करके अनुतोष को परिवर्तित करने का अधिकार है, जिसे इस तथ्य के बावजूद पारित किया जाना चाहिए कि दूसरे पक्ष ने कोई अपील या प्रति-आपत्ति प्रस्तुत नहीं की है।

12. बनारसी व अन्य विरुद्ध राम फल² के प्रकरण में माननीय उच्चतम न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 22 में निहित प्रावधानों पर विचार किया तथा अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी बिना कोई प्रति आपत्ति दर्ज किए अपना बचाव कर सकता है, जहां तक डिक्री उसके पक्ष में है। यह निम्नानुसार अवधारित किया गया:—

"10. सिविल प्रक्रिया संहिता संशोधन 1976 ने सामान्य अंतर को छोड़कर विधि में कोई महत्वपूर्ण या सारवान परिवर्तन नहीं किया है। संशोधित आदेश 41 नियम 22 उपनियम (1) के अधीन भी, जिस पक्ष के पक्ष में डिक्री पूरी तरह से है, वह न तो कोई आपत्ति दर्ज करने का हकदार है और न ही बाध्य है। यद्यपि, उपनियम (1) के पाठ में किया गया सम्मिलन किसी निष्कर्ष के विरुद्ध आपत्ति दर्ज करने की स्वीकृति देता है। हम शीघ्र ही बताएंगे कि इससे क्या अंतर पैदा हुआ है। एक प्रतिवादी बिना कोई आपत्ति दर्ज किए अपना बचाव कर सकता है, जहां तक डिक्री उसके पक्ष में है; यद्यपि, यदि वह डिक्री के किसी हिस्से पर आघात करने का प्रस्ताव करता है, तो उसे आपत्ति दर्ज करनी होगी। 1976 के संशोधन द्वारा डाला गया संशोधन स्पष्टीकरणात्मक और सक्षम करने वाला है और प्रावधान का विश्लेषण करके इसे सटीक बनाया जा सकता है। तीन स्थितियाँ हो सकती हैं:

- (i) आक्षेपित डिक्री आंशिक रूप से अपीलार्थी के पक्ष में और आंशिक रूप से उत्तरवादी के पक्ष में है।
- (ii) डिक्री यद्यपि एक विवाद्यक प्रतिवादी के विरुद्ध तय किया गया है, तथापि निर्णय पूर्णतः उत्तरवादी के पक्ष में है।
- (iii) निर्णय पूर्णतः प्रतिवादी के पक्ष में है तथा सभी विवाद्यकों का उत्तर भी उत्तरवादी के पक्ष में दिया गया है, परन्तु निर्णय में एक निष्कर्ष ऐसा है जो उत्तरवादी के विरुद्ध जाता है।



11. (i) प्रकार के प्रकरण में उत्तरवादी के लिए यह आवश्यक था कि वह डिक्री के उस भाग के विरुद्ध अपील प्रस्तुत करे या प्रति आपत्ति ले, जो उसके विरुद्ध है, यदि वह उससे छुटकारा पाना चाहता है, यद्यपि डिक्री का वह भाग जो उसके पक्ष में है, वह बिना किसी प्रति आपत्ति के उसका समर्थन करने का हकदार है। संशोधन के बाद भी विधि ऐसा ही है। संशोधन से पहले (ii) और (iii) प्रकार के मामलों में सिविल प्रक्रिया संहिता ने उत्तरवादी को कोई प्रति आपत्ति लेने का अधिकार नहीं दिया और न ही उसे इसकी स्वीकृति दी, क्योंकि वह डिक्री से व्यथित व्यक्ति नहीं था। स्पष्टीकरण के प्रकाश में पढ़ा जाए तो संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन, यद्यपि उत्तरवादी के लिए अभी भी यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने प्रतिकूल किसी भी निष्कर्ष को चुनौती देते हुए कोई प्रति आपत्ति ले, क्योंकि डिक्री पूरी तरह से उसके पक्ष में है और वह बिना किसी प्रति आपत्ति के डिक्री का समर्थन कर सकता है; उप-नियम (1) के पाठ में किया गया संशोधन, जिसे नए सिरे से सम्मिलित स्पष्टीकरण के साथ पढ़ा जाए, उसे किसी विवादक का उत्तर देते समय या किसी विवादक से निराकरण समय उसके विरुद्ध दर्ज किए गए निष्कर्ष पर प्रति-आपत्ति लेने का अधिकार देता है। ऐसी प्रति-आपत्ति करने का लाभ उप-नियम (4) द्वारा स्पष्ट किया गया है। मूल अपील को वापस ले लिए जाने या व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिए जाने के बावजूद, उत्तरवादी द्वारा किसी भी निष्कर्ष पर की गई प्रति-आपत्ति अभी भी गुण-दोष के आधार पर न्यायनिर्णय के लिए उपलब्ध होगी, जो उपाय असंशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन उत्तरवादी के लिए उपलब्ध नहीं था। संशोधन-पूर्व युग में, मूल अपील को व्यतिक्रम के कारण वापस लेने या खारिज करने से उत्तरवादी को उत्तरवादी के विरुद्ध दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष की शुद्धता या अन्यथा पर प्रश्न उठाने में असमर्थ हो जाता था।”

13. इस प्रकरण में, मेरी सुविचारित राय में, आदेश 41 नियम 33 सिविल प्रक्रिया संहिता को विद्वान प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता था, क्योंकि यह कोई अपवादात्मक प्रकरण नहीं है, जिसने प्रथम अपीलीय न्यायालय को इस तरह के प्रावधान को लागू करने के लिए राजी किया हो। वादी का मुकदमा केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उसने वाद की भूमि का मालिकाना हक प्राप्त करने के बाद कब्जे से अनुतोष नहीं मांगी है और उसके बाद, उसने विचारण न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए और कब्जे का निर्णय प्राप्त करने के लिए एक अपील प्रस्तुत की, जिसमें उसने संशोधन हेतु एक आवेदन भी प्रस्तुत किया, जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यह विलम्बित है।



14. इस तथ्य को देखते हुए कि डिक्री वाद को खारिज करने की थी, इसलिए यह पूरी तरह से प्रतिवादी क्रमांक 1 के पक्ष में थी। चूंकि प्रतिवादी क्रमांक 1 के विरुद्ध एक विवाद्यक बनारसी (पूर्वोक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपतियों द्वारा उल्लिखित 2 और 3 स्थिति के अधीन आने के रूप में तय किया गया था और प्रति-अपील या प्रति-आपत्ति के अभाव में, प्रथम अपीलीय न्यायालय के पास डिक्री को संशोधित करने का अधिकार नहीं था और वह यह नहीं मान सकता था कि विक्रय विलेख एक बंधक विलेख या नाममात्र विक्रय विलेख है। अन्यथा भी, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 58 (ग) के प्रावधान में यह प्रावधान है कि विक्रय को बंधक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ऐसा कोई भी लेनदेन बंधक नहीं माना जाएगा, जब तक कि दस्तावेज में ऐसी शर्त न हो जो विक्रय को प्रभावित करती हो या प्रभावित करने का दावा करती हो और बेशक, वादी के पक्ष में उक्त विक्रय विलेख में ऐसी कोई शर्त नहीं थी क्योंकि विचाराधीन विक्रय विलेख यह प्रकट नहीं करता है कि वह लेनदेन बंधक या सशर्त विक्रय का है। (धर्मजी शंकर शिंदे व अन्य विरुद्ध राजाराम श्रीपाद जोशी (मृत) द्वारा-विधिक प्रतिनिधियों व अन्य³ और सोपान (मृत) द्वारा-विधिक प्रतिनिधियों विरुद्ध सैयद नबी⁴ देखें।), इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा प्रस्तुत किसी भी प्रति-अपील या प्रति-आपत्ति के बिना विवाद्यक क्रमांक 1 और 4 पर निष्कर्ष निकालना पूर्णतया अनुचित है।

15. यह सुस्थापित विधि है कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के प्रावधान के आधार पर स्वत्व की घोषणा के लिए मात्र वाद अनुरक्षणीय नहीं है, यदि वादी के पास वाद भूमि का कब्जा नहीं है, परंतु वाद को खारिज करने से पूर्व, न्यायालय को वादी को कब्जे से अनुतोष की मांग करते हुए वादपत्र को संशोधित करने का अवसर देना चाहिए, यदि ऐसा वांछित हो।

16. माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपतियों ने रुखमाबाई विरुद्ध लाला लक्ष्मीनारायण व अन्य⁵ के प्रकरण में यह अवधारित किया है कि उपर्युक्त शर्त के आधार पर वाद की सुनवाई योग्य होने पर आपत्ति यथाशीघ्र ली जानी चाहिए, क्योंकि ऐसी स्थिति में वादी शर्त के अनुपालन के लिए आवश्यक संशोधन की मांग कर सकता है। माननीय न्यायाधिपतियों ने आगे निम्नानुसार अवधारित किया है :-

“30. यह अभिवचन कि वादी ने केवल घोषणा की मांग की, यद्यपि वह धारा 42 के अर्थ में आगे की अनुतोष मांगने की स्थिति में था और इसलिए वाद को समय रहते खारिज कर दिया जाना चाहिए था, शीघ्र अति शीघ्र उठाया जाना चाहिए, जिस

3 (2019) (6) Scale 682

4 JT 2019 (7) SC 301

5 AIR 1960 SC 335



स्थिति में वादी धारा 42 के प्रावधानों का अनुपालन करने के लिए आवश्यक संशोधन की मांग कर सकता है। यह व्यवहार का एक सुस्थापित नियम है कि वादों को स्वचालित रूप से खारिज नहीं किया जाता है, बल्कि वादी को आवश्यक संशोधन करने की स्वीकृति दी जाती है यदि वह ऐसा करना चाहता है। (यह अभिवचन उच्चतम न्यायालय में उठाए जाने की स्वीकृति नहीं दी गई।)”

17. कल्याण सिंह विरुद्ध वकीलसिंह व अन्य⁶ के प्रकरण में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने रुखमाबाई (पूर्वोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांत का अनुपालन करते हुए अभिनिर्धारित किया है कि स्वत्व की घोषणा के लिए मात्र वाद वर्जित नहीं है तथा विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के प्रावधान से वाद खारिज नहीं होगा तथा वादी को यदि वह चाहे तो वादपत्र में संशोधन का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:

“20. उपर्युक्त अधिकारियों से जो विधिक स्थिति निकलती है, वह निम्नानुसार है:—

(i) विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के प्रावधान में उल्लिखित मात्र घोषणा से अधिक अनुतोष वादी को वाद की तिथि पर प्राप्त होने वाली पात्रता पर विचार करता है;

(ii) वाद के लंबित रहने के दौरान घटित किसी घटना के आधार पर वादी को और अधिक अनुतोष प्राप्त करने का अधिकार होने से वाद को बनाए रखने योग्य नहीं बनाया जा सकता;

(iii) वादी की यह इच्छा है कि वह उस वाद में मात्र घोषणा के आदेश से संतुष्ट हो जाए और फिर परिसीमा विधि के अधीन स्वतंत्र वाद लाकर और अधिक अनुतोष के लिए वाद प्रस्तुत करे या उस वाद में ही संशोधन करके और अधिक अनुतोष के लिए प्रार्थना करे;

(iv) प्रावधान द्वारा अधिनियमित प्रतिबन्ध से वाद स्वतः ही खारिज नहीं हो जाता, परंतु वादी को वादपत्र में संशोधन करने का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए, यदि वह ऐसा चाहे;

(v) वादी को और अधिक अनुतोष तब तक प्रदान नहीं किया जा सकता, जब तक कि विशेष रूप से इसके लिए अनुरोध न किया गया हो। ”



18. यह सुस्थापित विधि है कि वाद हेतु कार्रवाई का कारण वाद से पूर्व होना चाहिए। परंतु एक बार जब विवाद वाद से पूर्व कार्रवाई के कारण पर स्थापित हो जाती है, तो न्यायालय अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है, बल्कि उन सभी वाद के अनुवर्ती घटनाक्रमों पर ध्यान देना चाहिए जो वाद में विनिश्चित किए जाने वाले प्रश्न को प्रभावित करने की संभावना रखते हैं। (देखें बिभास चंद्र बोस विरुद्ध श्रीमती डॉली बोस नी दत्त⁷)।

19. प्रताप सिंह विरुद्ध श्री कृष्ण गुप्ता व अन्य⁸ के प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने संक्षिप्त में अभिनिर्धारित किया है कि तकनीकीताओं का अवमूल्यन किया जाना चाहिए ताकि सार गणना की जा सके और उससे प्राथमिकता ली जा सके और यह अभिवचन के नियमों की तकनीकीताओं को बहुत अधिक महत्व देना होगा और उन्हें न्याय के प्रशासन के लिए सहायक होने के बजाय स्वामिनी बनने की स्वीकृति देना होगा, यदि न्यायालय अपना हाथ मोड़ता है और बाद की सभी घटनाओं या विकासों पर ध्यान नहीं देता है जो विधि में दावा की गई अनुतोष को प्रभावित कर सकते हैं और पक्षकारों को परिवर्तित या अनुवर्ती विकास के आधार पर अनुतोष प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं क्योंकि यह सुस्थापित है कि ऐसी अनुवर्ती घटना और मुकदमे को कम करने और कार्यवाही की बहुलता को रोकने हेतु न्यायालय को ध्यान देना है (देखें मेसर्स एम लक्ष्मी एंड कंपनी विरुद्ध डॉ. अनंत आर देशपांडे व अन्य⁹ और शिखरचंद जैन विरुद्ध दिगंबर जैन प्रबंध करिणी सभा¹⁰)।

20. रुखमाबाई (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय तथा उसके पश्चात कल्याण सिंह (पूर्वोक्त) में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लौटते हुए, यह स्पष्ट है कि वादी ने शुरू में स्वत्व की घोषणा तथा स्थायी निषेधाज्ञा हेतु वाद प्रस्तुत किया था, जिसे यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि यद्यपि वह वाद भूमि का स्वत्व धारक है, परंतु चूंकि वह वाद भूमि पर कब्जा नहीं रखता है, इसलिए वह स्थायी निषेधाज्ञा के लिए डिक्री का हकदार नहीं है। दिनांक 15.4.2000 को प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष वादी ने कब्जे की अनुतोष का दावा करने के लिए न्यायालय से स्वीकृति मांगी, जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय ने उक्त आवेदन को प्रस्तुत करने में विलम्ब के आधार पर खारिज कर दिया। रुखमाबाई (पूर्वोक्त) के प्रकरण में माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि स्वत्व की घोषणा हेतु एक वाद में, यदि वादी के पास कब्जा नहीं पाया जाता है, तो वादपत्र को संशोधित करने और कब्जे की अनुतोष का दावा करने का अवसर दिया जाना चाहिए और वाद को खारिज नहीं किया जाना चाहिए और आगे अभिनिर्धारित किया कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के प्रावधान द्वारा अधिनियमित रोक से वाद को स्वचालित रूप से

7 AIR 1989 Calcutta 190

8 AIR 1956 SC 140

9 AIR 1973 SC 171

10 AIR 1974 SC 1178



खारिज नहीं किया जाता है और अनुवर्ती घटना का प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जाना चाहिए। वर्तमान प्रकरण में, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादी को वादपत्र को संशोधित करने का अवसर नहीं दिया, बल्कि रुखमाबाई (पूर्वोक्त) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुरूप संशोधन हेतु मांगे गए आवेदन पर आपत्ति जताई।

21. इसके दृष्टिगत, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा संशोधन हेतु आवेदन को खारिज करना पूर्णतः अनुचित है, जिसे रुखमाबाई (पूर्वोक्त) में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत के आलोक में वादी को वादपत्र में संशोधन करने की स्वीकृति प्रदान करने हेतु प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिया जाना चाहिए था और इसलिए, उसके आवेदन को खारिज करने वाले आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और परिणामस्वरूप, वादी द्वारा वादपत्र में अनुतोष खंड को संशोधित करने की मांग करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के अधीन दिनांक 15.4.2000 को प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष संशोधन हेतु प्रस्तुत आवेदन(आई.ए.क्रमांक 1) को स्वीकार किया जाता है। अपीलार्थीगण(मूल वादी के विधिक प्रतिनिधियों) को आज से तीन सप्ताह के भीतर वादपत्र में संशोधन को निगमित करने का निर्देश दिया जाता है।

22. उपर्युक्त विधिक विश्लेषण के दृष्टिगत, प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को अपास्त किया जाता है तथा इस न्यायालय द्वारा स्वीकृत संशोधन के दृष्टिगत, यह निर्देश एवं डिक्री दी जाती है कि वादी (अपीलार्थी) वाद भूमि का स्वत्व धारक है तथा वह ग्राम खड़सरा, तहसील कवर्धा, जिला राजनांदगांव (वर्तमान जिला कबीरधाम) में स्थित वाद भूमि, जिसका खसरा क्रमांक 252, क्षेत्रफल 0.40 एकड़ है, का कब्जा आज से दो माह के भीतर वादपत्र में संशोधन के अधीन प्राप्त करने का हकदार है। तदनुसार विधि के सारवान प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

23. द्वितीय अपील उपरोक्त दर्शित सीमा तक स्वीकार की जाती है, तथा पक्षकारों को अपना वाद-व्यय स्वयं वहन करना होगा।

24. तदनुसार डिक्री तैयार की जाए।

सही/-

(संजय के. अग्रवाल)

न्यायाधीश



(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

